29.7.5 नाट्य-रूढ़ियाँ

नाटक की मुख्य कथा को प्रारंभ करने से पूर्व कुछ कृत्यों का विधान है। इन्हें **पूर्वरंग** कहते हैं। पहले एक प्रकार की स्तुति होती है जिसे **नांदी** कहते हैं। नांदी के बाद **रंगद्वार** होता है, जिसमें देवताओं की वंदना सम्मिलित है।

नाटक के प्राचीनकालीन रूप अब प्रायः लुप्त हो गए हैं। आधुनिककाल में प्राचीन भारतीय नाट्य रूप के साथ आधुनिक पाश्चात्य नाट्य रूप को जोड़कर एक नये विधान के आश्रय से नाटक खेले जाते हैं।

29.8 पश्चिमी नाटक

पश्चिम में नाटकों के विवेचन का आधार अरस्तू का काव्यशास्त्र रहा है। भरत एवं अरस्तू दोनों नाटकों में अनुकृति को महत्व देते हैं पर भारतीय नाट्यशास्त्र में मूलाधार रस को ही माना गया है एवं पाश्चात्य साहित्य-चिंतन में संघर्ष को नाटक का मूल तत्व मानने के कारण कार्यवस्थाएँ भिन्न-भिन्न हैं।

नाटकों का वर्गीकरण उनके विषय, अंत, माध्यम, आकार, शिल्प आदि के आधार पर कई प्रकार से किया गया है। इसके प्रमुख भेद हैं - त्रासदी, कामदी, एकांकी, गीतिनाटक एवं प्रतीक नाटक। इनमें से त्रासदी, कामदी और एकांकी का संक्षेप से विवेचन किया जा रहा है।

29.8.1 त्रासदी

भारत में नाटकों में आदर्शवादिता पर बल था, पश्चिम में जीवन के प्रश्नों को लेकर यथार्थ का आग्रह रहा है। अरस्तू के अनुसार नाटकों का श्रेष्ठ रूप त्रासदी (ट्रेजेडी) है। त्रासदी की परिभाषा देते हुए अरस्तू ने लिखा है कि त्रासदी किसी गंभीर, स्वतःपूर्ण और निश्चित आयाम से युक्त कार्य की अनुकृति का नाम है जिसका माध्यम नाटक के भिन्न-भिन्न भागों में भिन्न-भिन्न रूप से प्रयुक्त सभी प्रकार के आभरणों से अलंकृत भाषा होती है, जो समाख्यान (वर्णनात्मक) रूप में न होकर कार्य-व्यापार रूप में होती है और जिसमें करुणा और भय के उद्रेक द्वारा इन मनोविकारों का उचित विरेचन होता है। इस परिभाषा के अनुसार त्रासदी दृश्य काव्य है श्रव्य काव्य नहीं, इसमें गंभीर विषय-वस्तु की उपस्थापना होती है। त्रासदी में कार्य-व्यापार करुणा तथा भय का उद्रेक करती है इसीलिए त्रासदी भय-मिश्रित करुण नाटक है। गीत तथा छंदोबद्ध संलाप की सहायता से त्रासदी का अनुकरण सम्पन्न होता है। इस प्रकार त्रासदी के छह तत्व हैं - वृत्त (plot), चरित्र (character), शैली (dictori), विचार (thought), दृश्य (spectacle), गीत (songs)। त्रासदी अंततः हमारे दुःख में हमारी महिमा को बनाए रखने के लिए प्रेरणा देती है। इसमें जीवन के तीन तत्व मिल जाते हैं - तनाव तथा संघर्ष, अभिनय और जीवन की चरितार्थता की खोज की जिज्ञासा से प्रेरित अर्थ या मूल्य दृष्टि।

वृत्त या कथावस्तु (plot)

अरस्तू के अनुसार चरित्र के स्थान पर कथावस्तु अधिक महत्वपूर्ण है। उनका कहना है कि घटना-संघटन द्वारा चरित्र चित्रण अनिवार्यतः हो जाता है। अतः नाटक में प्रधान तत्व कथावस्तु है। वस्तुतः कार्य का समूह कथानक या plot है और उसी के साथ चरित्र जुड़ा रहता है। प्लॉट को महत्व देने का कारण चरित्र ही है। दरअसल प्लॉट को महत्व देकर अरस्तू एक विचार-दृष्टि को महत्व देना चाहते थे। त्रासदी का प्राण केंद्र इसलिए घटना है। घटना चरित्र से उद्भूत हो अथवा चरित्र घटना रूप में व्यक्त हो, घटना ही व्यक्त होता है (Plot is artistically the first necessity of the drama. - Butcher)। वृत्त (कथानक या प्लॉट) की विन्यास-रीति सरल या जटिल होती है। वृत्त का आदि, मध्य और अंत होता

Scanned by CamScanner

29.8.3 एकांकी

उपन्यास, कहानी आदि अन्य गद्य रूपों के समान एकांकी भी भारतीय साहित्य को पश्चिम की देन है। उन्नीसवीं शती के अंतिम एवं बीसवीं शती के प्रथम चरण में 'प्रायोगिक' एवं लघु नाट्यों के आंदोलन ने एकांकी को एक समृद्ध नाट्य-रूप में विकसित होने मे बहुत सहायता दी। एकांकी का कभी भी पूर्ण नाटक के अंग के रूप में अस्तित्व नहीं रहा। उसका जन्म स्वतंत्र रूप में हुआ और अपनी अंतरंग शक्ति से उसने सदा अपना अलग और विशिष्ट स्थान बनाए रखा। जीवन के किसी एक पक्ष अथवा एक घटना या पात्र-वैशिष्ट्य को रेखांकित करने के कारण उसमें बड़ी नम्यता और विविधता होती है। कहानी की तरह इकहरापन और प्रभावान्विति एकांकी का भी वैशिष्ट्य होता है। एकांकी के कथानक की **आरंभ** और **प्रयत्न** दो ही अवस्थाएँ होती हैं और **प्राप्त्याशा** के पूर्व ही कार्य की समाप्ति हो जाती है। एकांकी में कार्य, स्थान और काल की संगति इसलिए अपेक्षित होती है कि इसमें विस्तार एवं वैविध्य की बहुत गुंजाइश नहीं है। **पात्र-विधान** के संबंध में पहली बात यह है कि एकांकी में उनकी संख्या पाँच-छह से अधिक नहीं होती। पात्रों के चरित्र का निर्माण उनके संस्कार, मनोविज्ञान और वातावरण के अनुसार ही होता है। **संवाद** एकांकी का सर्वस्व है क्योंकि संवाद के द्वारा ही कथा और चरित्र के स्थल सम्मुख लाए जाते हैं। **रंग-संकेत** का प्रयोग एकांकीकार कथा, चरित्र, संवाद का संयुक्त प्रभाव बढ़ाने के लिए करता है।

29.9 सारांश

आदिम साहित्य एकक था। यानी एक के भीतर ही बहु का समावेश था। एक ही शिल्पगत आधार में कविता, गान, नृत्य, नाटक, कथा आदि विद्यमान थे - मानो संयुक्त परिवार हो। आदिम समाज था श्रेणीहीन गणसमाज, आदिम संस्कृति थी - एक के बीच अनेक का समाहार एवं आदिम साहित्य में (आदिम शब्द मात्र कालवाचक है) कितनी धर्म-प्रेरणाएँ थीं और कितनी शिल्पकला की सृष्टि की वेदना कहना मुश्किल है। सभ्यता के प्रसार के साथ-साथ, समाज के श्रेणी-विभाग के साथ-साथ साहित्य का श्रेणी विभाग शुरू हुआ। केवल सामाजिक कार्य-कारण ही नहीं, साहित्य के श्रेणी विभाग के पीछे व्यक्तित्व एवं शिल्प रीति की देन भी कम नहीं। निरंतर अनुशीलन के फलस्वरूप शिल्प का कला-कौशल क्रमशः विशिष्ट आकार धारण करता है एवं इस विवर्धन के फलस्वरूप साहित्य का रूप परिवर्तित एवं बहुमुखी बनता रहता है। दूसरी ओर, क्रमाभिव्यक्ति के रास्ते से गुज़रते हुए व्यक्ति के चित्त का विकास और विस्तार होता रहता है। आत्म-चेतना, वस्तु-चेतना, विश्व-चेतना एवं शिल्प-चेतना जाग उठती है। उस जाग्रत चैतन्य के फलस्वरूप शिल्प भावना और प्रकाश रीति विशिष्टता और वैचित्र्य प्राप्त करती है। इस तरह सामाजिक विवर्तन, व्यक्तित्व का प्रसार एवं शिल्पगत विवर्धन के फलस्वरूप एकक साहित्य बहुमुखी रूप धारण कर लेता है और इस प्रकार साहित्य की विधाओं का विस्तार होता है। प्रस्तुत इकाई में आपने साहित्य की प्रमुख विधाओं के स्वरूप एवं विशिष्टताओं की जानकारी प्राप्त की।

29.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

डॉ.शंभूनाथ सिंह, **हिंदी महाकाव्य का स्वरूप और विकास**, हिंदी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी।

डॉ. निर्मला जैन, **आधुनिक हिंदी काव्य में रूप और विधाएँ**, वाणी प्रकाशन, दिल्ली।

धीरेन्द्र वर्मा (संपा.), **हिंदी साहित्य कोश भाग-1**, ज्ञानमंडल लिमिटेड, वाराणसी।

Scanned by CamScanner